

Premchand
Ramlila
Chapter 1
DV

इधर क मुदत से रामलीला देखने नहीं गया। बंदरों के भद्दे चेहरे लगाये, आधी टाँगों का पाजामा और काले रंग का कुरता पहने, आदमियों को दौड़ते, हू-हू करते देख कर अब हँसी आती है, मजा नहीं आता। काशी की लीला जगद्विख्यात है। सुना है लोग दूर-दूर से देखने आते हैं। मैं भी बड़े शौक से गया ; पर मुझे तो वहाँ की लीला और किसी वज्र देहात की लीला में कोई अन्तर न दिखाई दिया। हाँ, राम नगर की लीला के कुछ साज-समाज अच्छे हैं। राक्षसों और बंदरों के चेहरे पीतल के, गदाँ भी पीतल की , कदाचित बनवासी भ्राताओं के मुकुट सच्चे काम के हों, लेकिन साज-समाज के सिवा वहाँ भी वही हू-हू के सिवा और कुछ नहीं फिर भी लाखों आदमियों की भीड़ लगी रहती है।

लेकिन क जमाना वह था, जब मुझे भी राम लीला में आनन्द आता था। आनन्द तो बहुत हल्का-सा शब्द है। वह आनन्द उन्माद से कम न था। संयोगवश उन दिनों मेरे घर से बहुत थोड़ी दूर पर रामलीला का मैदान था और जिस घर में लीला पात्रों का रंग रूप भरा जाता था, वह मेरे घर से बिल्कुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से पात्रों की सजावट होने लगती थी । मैं दोपहर से वहाँ जा बैठता और जिस उत्साह से दौड़-दौड़ कर मोटे-मोटे काम करता, उस उत्साह से तो आज अपनी पेंशन भी लेने नहीं जाता । क कोठरी में राजकुमारों का श्रृंगार होता था । उनकी देह में रामरज

पीस कर पोती जाती, मुँह पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल, हरे, नीले रंग की

बुन्दकियाँ लगायी जाती थीं। सारा माथा, भौहें, गाल, ठोड़ी, बुन्दिकियों से रच उठती थीं। क ही आदमी इस काम में कुशल था। वही बारी-बारी से तीनों पात्रों का श्रृंगार करता था।

रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना मेरा काम था। जब इन तैयारियों के बाद विमान निकलता तो उस पर रामचन्द्र जी के पीछे बैठ कर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था, वह अब लाट साहब के दरबार में कुरसी पर बैठकर भी नहीं होता। क बार जब मेम्बर साहब ने व्यवस्थापक सभा में मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन किया था, उस वक्त मुझे कुछ उसी तरह का उल्लास, गर्व और रोमांच हुआ था। हाँ, क बार जब मेरा ज्येष्ठ पुत्र नायब तहसीलदारी में नाम-जद हुआ, तब भी कुछेसी तरंगे मन में उठी थी ; पर इनमें और बाल-विह्वलता में बड़ा अन्तर है। तबेसा मालूम होता था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूँ।

निषाद नौका-लीला का दिन था। मैं दो चार लड़कों के बहकाने में आकर गुल्ली-डंडा खेलने लगा था। आज श्रृंगार देखने न गया। विमान भी निकला पर मैंने खेलना न छोड़ा। मुझे अपना दाँव लेना था। अपना दाँव छोड़ने के लि उससे कहीं बढ़कर आत्म-त्याग की जरूरत थी, जितना मैं कर सकता था। अगर दाँव देना होता, तो मैं कब का भाग खड़ा होता ; लेकिन पदाने में कुछ और ही बात होती है। खैर, दाँव पूरा हुआ। अगर चाहता तो धाँधली करके दस-पाँच मिनट और पदा सकता था इसकी काफी गुंजाइश थी, लेकिन अब इसका मौका न था। मैं सीधे नाले की तरफ दौड़ा। विमान

जल-तट पर पहुँच चुका था। मैंने दूर से देखा, मल्लाह किशती लिये आ रहा है। दौड़ा लेकिन आदमियों की भीड़ में दौड़ना कठिन था। आखिर जब मैं भीड़ हटाता, प्राणपण से आगे बढ़ता घाट तक पहुँचा तो निषाद अपनी नौका खोल चुका था। रामचन्द्र पर मेरी कितनी श्रद्धा थी। मैं अपने पाठ की चिन्ता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिससे वह फेल न हो जायँ। मुझसे उम्र ज्यादा होने पर भी वह नीची कक्षा में पढ़ते थे। लेकिन वही रामचन्द्र नौका पर बैठे इस तरह मुँह फेरे चले जाते थे, मानों मुझसे जान-पहचान ही नहीं। नकल में भी असल की कुछ न कुछ बू आ ही जाती है। भक्तों पर जिनकी निगाह सदा तीखी रही है, वह मुझे क्या उबारते ? मैं विकल होकर उस बछड़े की भाँति कूदने लगा जिसकी गरदन पर पहली बार जुआँ रखा गया हो। कभी लपक कर नाले की ओर जाता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ दौड़ता, पर सबके सब अपनी धुन में मस्त

थे ; मेरी चीख पुकार किसी के कानों तक न पहुँची। तब से बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ झेली, पर
उस समय जितना दुःख